IJARASEM

ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 5, September 2023

INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

आदिवासी विमर्श

DR. VANDANA SHARMA

ASSISTANT PROFESSOR, HINDI LITERATURE, GOVT. COLLEGE, TALERA, BUNDI, RAJASTHAN, INDIA

सार

आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो। आदिवासी साहित्य को विभिन्न जगहों पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन-अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में ं एबोरिजिनल लिटरेचर, तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है।

परिचय

आदिवासी साहित्य की उपलब्धता

ऑरेचर

आदिवासी साहित्यकार इस विभाजन को स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि चूंकि उनका जीवनदर्शन किसी भी विभाजन के पक्ष में नहीं है, उनके समाज में समरूपता और समानता है, इसलिए उनका साहित्य भी विभाजित नहीं है। वह एक ही है। वे अपने साहित्य को 'ऑरेचर'[1] कहते हैं। ऑरेचर अर्थात् ऑरल + लिटरेचर। उनकी स्थापना है कि उनके आज का लिखित साहित्य भी उनकी वाचिक यानी पुरखा साहित्य की परंपरा का ही साहित्य है। ऑरेचर की अवधारणा सबसे पहले युगांडा के आदिवासी लेखक पियो जिरिमू ने प्रस्तुत की थी जिसे दुनिया के अधिकांश आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों ने स्वीकार किया। इनमें अफ्रीका के न्गूगी वा थ्योंगो और भारत की वंदना टेटे प्रमुख हैं। हालांकि गैर-आदिवासी साहित्यिक और अकादमिक जगत में अभी भी वाचिक साहित्य की स्वीकार्यता ज्यादा है।[1,2,3]

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के मत हैं-

- (1) आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।
- (2) आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।
- (3) 'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है।

पहली अवधारणा गैर-आदिवासी लेखकों की है। परंतु समर्थन में कुछ आदिवासी लेखक भी हैं। जैसे, रमणिका गुप्ता, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आदि गैर-आदिवासी लेखक, और हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, आईवी हांसदा आदि आदिवासी लेखक।

दूसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों और साहित्यकारों की है जो जन्मना और स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानते हैं।

अंतिम और तीसरी अवधारणा उन आदिवासी लेखकों की है, जो 'आदिवासियत' के तत्वों का निर्वाह करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य के रूप में स्वीकार करते हैं। ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14-15 जून 2014 को रांची (झारखंड) में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में इस अवधारणा को ठोस रूप में प्रस्तुत किया, जिसे 'आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा-पत्र' के तौर पर जाना जा रहा है और अब जो आदिवासी साहित्य विमर्श का केन्द्रीय बिंदु बन गया है।

> "आदिवासियों के आदिवासियत को न तो आप वर्गीकृत कर सकते हैं न ही किसी मानक से नाप सकते हैं क्योंकि यह तो विरासत में मिला हुआ वह गुण है जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता और न ही इसे कोई खारिज कर सकता है। किसी व्यक्ति की आदिवासियत को आप इस बात से भी नहीं तय कर सकते हैं कि उसमें आदिवासी खून कितना है।"[4,5,6]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

- अनिता हेइस (सिडनी), रीड-गिल्बर्ट, केरी संपादित पुस्तक ''व्हाइ डज ए ब्लैक वूमेन राइट?' (2000) में शामिल 'द स्ट्रेंथ ऑफ अस ऐज वूमेन: ब्लैक वूमेन स्पीक' लेख (पृ. 51) में

आदिवासी साहित्य का रांची घोषणा-पत्र

आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन का होना है जिसके मूल तत्त्व हैं -

1. प्रकृति की लय-ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
3. जिसमें पुरखा-पूर्वजों के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो।
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो।
6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो।
8. जो धरती को संसाधन की बजाय मां मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो।
9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।
10. जो हर तरह की गैर-बराबरी के खिलाफ हो।
11. जो भाषायी और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार पक्ष में हो।
12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।
13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव-बचाव में यकीन करता हो।
14. सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर-संगीत हो।
15. मूल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्वदृष्टिकोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।

आदिवासी साहित्य का भाषायी मानचित्र[7,8,9]

आदिवासी साहित्य वाचिक तौर पर अपनी मूल आदिवासी भाषाओं में बहुत समृद्ध और विपुल है। भारत में लिखित आदिवासी साहित्य की शुरुआत बीसवीं सदी के आरंभिक दौर में होती है जब औपनिवेशिक दिनों में आदिवासी समुदाय आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आते हैं। विशेषकर, झारखंड और उत्तर-पूर्व के आदिवासी इलाकों में। तब से लेकर आज तक अंग्रेजी और हिंदी, बांग्ला, ओड़िया, असमी, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन निरंतर प्रगति पर है और हर वर्ष सौ से अधिक आदिवासी रचित पुस्तकें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो रहा है।

भारत में आदिवासी साहित्य पांच भाषा परिवार के भाषाओं में वाचिक और लिखित रूप में उपलब्ध है -

- आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार
- चीनी-तिब्बती भाषा परिवार
- द्रविड़ भाषा परिवार
- अंडमानी भाषा परिवार
- भारोपीय आर्य भाषा परिवार

आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार

यह आदिवासी भाषा परिवार मुख्य रूप से भारत में झारखंड, छत्तीसगढ, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के ज्यादातर हिस्सों में बोली जाती है। संख्या की दृष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली या संताली है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो, मुंडारी, भूमिज, खड़िया, सावरा इत्यादी प्रमुख भाषाएं हैं।

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार

इस परिवार की ज्यादातर भाषाएं भारत के सात उत्तर-पूर्वी राज्यों में बोली जाती है। जिनमें नगा, मिज़ो, म्हार, मणिपुरी, तांगखुल, खासी, दफ़ला, आओ आदि भाषाएं प्रमुख हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

द्रविड़ भाषा परिवार

यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार की सदस्य गैर-आदिवासी भाषाएं ज्यादातर दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। जिसमें तमिल, कन्नड़, मलयालम और तेलुगू भाषाएं हैं। परंतु द्रविड़ परिवार की आदिवासी भाषाएं पूर्वी, मध्य और दक्षिण तक के राज्यों में बोली जाती हैं। गोंडों की गोंडी, उरांव, किसान और धांगर समुदायों की कुड़ख और पहाड़िया की मल्तो या मालतो द्रविड़ परिवार की प्रमुख आदिवासी भाषाएं हैं।

अंडमानी भाषा परिवार

जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे छोटा आदिवासी भाषायी परिवार है। इसके अंतर्गत अंडबार-निकाबोर द्वीप समूह की भाषाएं आती हैं, जिनमें अंडमानी, ग्रेड अंडमानी, ओंगे, जारवा आदि प्रमुख हैं।[10,11,12]

भारोपीय आर्य भाषा परिवार

भारत की दो तिहाई से अधिक गैर-आदिवासी आबादी हिन्द आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करती है। जैसे, संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कोंकणी आदि भाषाएं। परंतु राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि राज्यों के भीलों की वर्तमान भीली, भिलाला और वागड़ी, इसी भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत आती है।

विचार-विमर्श

सामान्यतः "आदिवासी" (Indigenous peoples) शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। परन्तु संसार के विभिन्न भूभागों में जहाँ अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, "इंडियन" अमरीका के आदिवासी कहे जाते हैं और प्राचीन साहित्य में दस्यु, निषाद आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातियों समूहों का उल्लेख किया गया है उनके वंशज समसामयिक भारत में आदिवासी माने जाते हैं। आदिवासी के समानार्थी शब्दों में ऐबोरिजिनल, इंडिजिनस, देशज, मूल निवासी, जनजाति, गिरिजन, बर्बर, आदि प्रचलित हैं। इनमें से हर एक शब्द के पीछे सामाजिक व राजनीतिक संदर्भ हैं।

संस्कृति

अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। वे सामन्यत: क्षेत्रीय समूहों में रहते हैं और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव रहता है तथा ऊपर की थोड़ी ही पीढ़ियों का यथार्थ इतिहास क्रमश: किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं में घुल मिल जाता है। सीमित परिधि तथा लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों के रूप में स्थिरता रहती है, किसी एक काल में होनेवाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परंपराकेंद्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने अनेक पक्षों में रूढ़िवादी सी दीख पड़ती हैं। लेकिन भारत में हिंदू धर्म की संस्कृति इनमें देखी जाती है और वो सनातन के वँशज कहलाते है। उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अनेक द्वीपों और द्वीपसमूहों में आज भी आदिवासी संस्कृतियों के अनेक रूप देखे जा सकते हैं।

भारत के आदिवासी

दो आदिवासी लड़कियाँ

भारत में अनुसूचित आदिवासी समूहों की संख्या 700 से अधिक है।भारत में 1871 से लेकर 1941 तक हुई जनगणनाओं में आदिवासियों को अन्य धर्मों से अलग धर्म में गिना गया है, जैसे Other religion-1871, ऐबरिजनल 1881, फारेस्ट ट्राइब-1891, एनिमिस्ट-1901, एनिमिस्ट-1911, प्रिमिटिव-1921, ट्राइबल रिलिजन -1931,"ट्राइब-1941" इत्यादि नामों से वर्णित किया गया है। हालांकि 1951 की जनगणना के बाद से आदिवासियों को हिन्दू धर्म में गिनना शुरू कर दिया गया है।[13,14,15]

भारत में आदिवासियों को हिंदू धर्म के दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है- अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति। हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 2 (2) के अनुसार अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर लागू नहीं है। यदि ऐसा है, तो हिंदू मैरिज एक्ट की धारा 9 के तहत फैमिली कोर्ट द्वारा जारी किया गया निर्देश अपीलकर्ता पर लागू नहीं होता है। " आदिवासी लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं,और सारे त्यौहार मनाते है। इन पर मुसलमानों ने सदैव ज़ुल्म किये जब भारत मुसलमान और अंग्रेजों का गुलाम था। उनकी प्रथागत जनजातीय आस्था के अनुसार विवाह और उत्तराधिकार से जुड़े मामलों में सभी विशेषाधिकारों को बनाए रखने के लिए उनके जीवन का अपना तरीका भी है।

भारत की जनगणना 1951 के अनुसार आदिवासियों की संख्या 9,91,11,498 थी जो 2001 की जनगणना के अनुसार 12,43,26,240 हो गई। यह देश की जनसंख्या का 8.2 प्रतिशत है।

प्रजातीय दृष्टि से इन समूहों में नीग्रिटो, प्रोटो-आस्ट्रेलायड और मंगोलायड तत्त्व मुख्यत: पाए जाते हैं, यद्यपि कतिपय नृतत्ववेत्ताओं ने नीग्रिटो तत्त्व के संबंध में शंकाएँ उपस्थित की हैं। भाषाशास्त्र की दृष्टि से उन्हें आस्ट्रो-एशियाई, द्रविड़ और तिब्बती-चीनी-परिवारों की भाषाएँ बोलनेवाले समूहों में विभाजित किया जा सकता है। भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है : उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र।

आदिवासी निवास क्षेत्र

उत्तर पूर्वीय क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय अंचल के अतिरिक्त तिस्ता उपत्यका और ब्रह्मपुत्र की यमुना-पद्मा-शाखा के पूर्वी भाग का पहाड़ी प्रदेश आता है। इस भाग के आदिवासी समूहों में गुरूंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गारो, खासी, नाग, कुकी, लुशाई, चकमा आदि उल्लेखनीय हैं।

मध्यक्षेत्र का विस्तार उत्तर-प्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिणी ओर राजमहल पर्वतमाला के पश्चिमी भाग से लेकर दक्षिण की गोदावरी नदी तक है। संथाल, मुंडा, माहली, उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार आदि इस भाग के प्रमुख आदिवासी हैं।

पश्चिमी क्षेत्र में भील, मीणा, ठाकूर, कटकरी, टोकरे कोली, कोली महादेव, मन्नेवार, गोंड, कोलाम, हलबा, पावरा (महाराष्ट्) आदि प्रमुख आदिवासी जनजातियां निवास करते हैं। मध्य पश्चिम राजस्थान से होकर दक्षिण में सह्याद्रि तक का पश्चिमी प्रदेश इस क्षेत्र में आता है। गोदावरी के दक्षिण से कन्याकुमारी तक दक्षिणी क्षेत्र का विस्तार है। इस भाग में जो आदिवासी समूह रहते हैं उनमें चेंचू, कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कोटा, कुरूंबा, बडागा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर आदि उल्लेखनीय हैं।

नृतत्ववेत्ताओं ने इन समूहों में से अनेक का विशद शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन किया है। इस अध्ययन के आधार पर भौतिक संस्कृति तथा जीवनयापन के साधन सामाजिक संगठन, धर्म, बाह्य संस्कृति, प्रभाव आदि की दृष्टि से आदिवासी भारत के विभिन्न वर्गीकरण करने के अनेक वैज्ञानिक प्रयत्न किए गए हैं। इस परिचयात्मक रूपरेखा में इन सब प्रयत्नों का उल्लेख तक संभव नहीं है। आदिवासी संस्कृतियों की जटिल विभिन्नताओं का वर्णन करने के लिए भी यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है। राठवा,भिल,तडवी,गरासिया,वसावा,बावचा,चौधरी, दुंगरा भील,पटेलिया ये सब आदिवासी (गुजरात) में रहते हैं। ओर वे प्रकृति की पूजा करते हैं। गुजरात के सोनगढ़ व्यरा, बारडोली सूरत,राजपिपला, छोटा उदेपुर,दाहोद, डांग ये जिलों में आदिवासी पाए जाते हैं।

आदिवासी परंपरा

प्राचीनकाल में आदिवासियों ने भारतीय परंपरा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया था और उनके रीति रिवाज और विश्वास आज भी हिंदू समाज में देखे जा सकते हैं, तथापि यह निश्चित है कि वे बहुत पहले ही भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा में मिल गए थे। आदिवासी समूह हिंदू समाज के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों में समान है,कुछ समूहों में कई महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। समसामयिक आर्थिक शक्तियों तथा सामाजिक प्रभावों के कारण भारतीय समाज के इन विभिन्न अंगों की दूरी अब कम हो चुकि है।[16,17,18]

आदिवासियों की सांस्कृतिक भिन्नता को बनाए रखने में कई प्रयत्नों का योग रहा है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें से अनेक में प्रबल "जनजाति-भावना" (ट्राइबल फीलिंग) है। सामाजिक-सांस्कृतिक-धरातल पर उनकी संस्कृतियों के गठन में केंद्रीय महत्त्व है। असम के नागा आदिवासियों की नरमुंडप्राप्ति प्रथा बस्तर के मुरियों की घोटुल संस्था, टोडा समूह में बहुपतित्व आदि का उन समूहों की संस्कृति में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु ये संस्थाएँ और प्रथाएँ भारतीय समाज की प्रमुख प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं हैं। आदिवासियों की संकलन-आखेटक-अर्थव्यवस्था तथा उससे कुछ अधिक विकसित अस्थिर और स्थिर कृषि की अर्थव्यवस्थाएँ अभी भी परंपरास्वीकृत प्रणाली द्वारा लाई जाती हैं। परंपरा का प्रभाव उनपर नए आर्थिक मूल्यों के प्रभाव की अपेक्षा अधिक है। धर्म के क्षेत्र में जीववाद, जीविवाद, पितृपूजा आदि हिंदू धर्म के और समीप लाते है।

आज के आदिवासी भारत में हिन्दू-संस्कृति-प्रभावों की दृष्टि से आदिवासियों के चार-धाम मुख्य धार्मिक स्थलों में से एक है।हिन्दू-संस्कृतियों का स्वीकरण इस मात्रा में कर लिया है कि अब वे केवल नाममात्र के लिए आदिवासी रह गए है।

परिणाम

आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिल कर बना है और इसका अर्थ मूल निवासी होता है। भारत की जनसंख्या का 8.6% (10 करोड़ जो 2011 जनगणना के अनुसार हैं (संस्कृत ग्रंथों में)। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन (क्योंकि

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

अधिकतर आदिवासी लोग जंगल और पहाड़ों पर रहने वाले लोग हैं, जो जल जंगल जमीन के सच्चे रखवाले हैं) कह कर पुकारा है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'अनुसूचित जनजाति' पद का उपयोग किया गया है। भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में आंध, गोंड, खरवार, मुण्डा, खड़िया, बोडो, कोल, भील, कोली, सहरिया, संथाल, भूमिज, हो, उरांव, लोहरा, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक, भिलाला, मीणा, भुईयां घटवाल,धानका आदि हैं।

भारत में आदिवासियों को प्रायः 'जनजातीय लोग' के रूप में जाना जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान झारखंड नॉर्थ ईस्ट के 8 राज्य में आदिवासी में बहुसंख्यक व गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक है जबकि भारतीय पूर्वोत्तर राज्यों में यह बहुसंख्यक हैं, जैसे मिजोरम। भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में " अनुसूचित जनजातियों " के रूप में मान्यता दी है। अक्सर इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी " अनुसूचित जाति एवं जनजाति " में रखा जाता है।

चंदा समिति ने सन् 1960 में अनुसूचति जातियों के अंर्तगत किसी भी जाति को शामिल करने के लिये 5 मानक निर्धारित किया:

1. भौगोलिक एकाकीपन
2. विशिष्ट संस्कृति
3. पिछड़ापन
4. संकुचित स्वभाव
5. आदिम जाति के लक्षण

बहुत से छोटे आदिवासी समूह आधुनिकीकरण के कारण हो रहे पारिस्थितिकी पतन के प्रति काफी संवेदनशील हैं। व्यवसायिक वानिकी और गहन कृषि दोनों ही उन जंगलों के लिए विनाशकारी साबित हुए हैं जो कई शताब्दियों से आदिवासियों के जीवन यापन का स्रोत रहे हैं। आदिवासी समाज की समस्या 1.अशिक्षा 2.अंधविश्वास&पाखण्डवाद 3.बेरोजगारी 4.भुखमरी 5.दहेजप्रथा[19,20,21]

आदिवासी भाषाएँ

भारत में सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषाएं है। भाषाविज्ञानियों ने भारत के सभी आदिवासी भाषाओं को मुख्यतः तीन भाषा परिवारों में रखा है-गोंडी, द्रविड़, आस्ट्रिक और लेकिन कुछ आदिवासी भाषाएं भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भी आती हैं। आदिवासी भाषाओं में ‘भीली’ बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है जबकि दूसरे स्थान पर ‘गोंडी’ भाषा और तीसरे स्थान पर ‘संताली’ भाषा है। चौथे स्थान पर कोरकू भाषा है । भारतीय राज्यों में एकमात्र झारखण्ड में ही 5 आदिवासी भाषाओं - संताली, मुण्डारी, हो, कुडुख और खड़िया - को 2011 में द्वितीय राज्यभाषा का दर्जा प्रदान किया गया।

भारत की 114 मुख्य भाषाओं में से 22 को ही संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इनमें हाल में शामिल की गयी संताली और बोड़ो ही मात्र आदिवासी भाषाएं हैं। अनुसूची में शामिल संताली (0.62), सिंधी, नेपाली, बोड़ो (सभी 0.25), मिताइ (0.15), डोगरी और संस्कृत भाषाएं एक प्रतिशत से भी कम लोगों द्वारा बोली जाती हैं। जबकि भीली (0.67), गोंडी (0.25), टुलु (0.19) और कुड़ख 0.17 प्रतिशत लोगों द्वारा व्यवहार में लाए जाने के बाद भी आठवीं अनुसूची में दर्ज नहीं की गयी हैं। (जनगणना 2001)

आदिवासियों के धार्मिक विश्वास

आदिवासियों का अपना धर्म भी है। ये प्रकृति-पूजक हैं और वन, पर्वत, नदियों एवं सूर्य की आराधना करते हैं। आधुनिक काल में जबरन बाह्य संपर्क में आने के फलस्वरूप इन्होंने हिन्दू, ईसाई एवं इस्लाम धर्म को भी अपनाया है। अंग्रेजी राज के दौरान बड़ी संख्या में ये ईसाई बने तो आजादी के बाद इनके हिंदूकरण का प्रयास तेजी से हुआ है। परन्तु आज ये स्वयं की धार्मिक पहचान के लिए संगठित हो रहे हैं और भारत सरकार से जनगणना में अपने लिए अलग से धार्मिक कोड (सरना कोड या आदिवासी धर्म कोड) की मांग कर रहे हैं।

भारत में 1871 से लेकर 1941 तक हुई जनगणनाओं में आदिवासियों को अन्य धर्मों से अलग धर्म में गिना गया है, जिसे एबओरिजिन्स, एबोरिजिनल, एनिमिस्ट, ट्राइबल रिलिजन या ट्राइब्स इत्यादि नामों से वर्णित किया गया है। हालांकि 1951 की जनगणना के बाद से आदिवासियों को अलग से गिनना बन्द कर दिया गया है।

भारत में आदिवासियों को दो वर्गों में अधिसूचित किया गया है- अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित आदिम जनजाति।

जीववाद

विश्वदृष्टि है कि जीववाद गैर-मानव संस्थाओं (जानवरों, पौधों, और निर्जीव वस्तुओं या घटनाओं) में एक आध्यात्मिक सार है। धर्म और समाज के विश्वकोश का अनुमान है कि भारत की आबादी का 1-5% जीववाद है। भारत सरकार मानती है कि भारत के स्वदेशी पूर्व-हिंदू जीववाद-आधारित धर्मों की सदस्यता लेते हैं।

कुछ स्वदेशी आदिवासी लोगों की विश्वास प्रणाली के लिए एक शब्द के रूप में धर्म के नृविज्ञान में जीववाद का उपयोग किया जाता है, विशेष रूप से संगठित धर्म के विकास से पहले। हालांकि प्रत्येक संस्कृति की अपनी अलग-अलग पौराणिक कथाएं और अनुष्ठान हैं, "जीववाद" को स्वदेशी लोगों के "आध्यात्मिक" या "अलौकिक" दृष्टिकोण के सबसे आम, मूलभूत सूत्र का वर्णन करने के लिए कहा जाता है। शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण इतना मौलिक, सांसारिक, रोज़मर्रा का और मान लिया गया है कि अधिकांश शत्रुतापूर्ण स्वदेशी लोगों के पास अपनी भाषाओं में एक शब्द भी नहीं है जो "जीववाद" (या "धर्म") से मेल खाता हो; यह शब्द एक मानवशास्त्रीय रचना है।[20,21,22]

सरनावाद

सरनावाद या सरना (स्थानीय भाषा: सरना धोरोम, जिसका अर्थ है "पवित्र जंगल का धर्म") मध्य-पूर्व भारत के राज्यों की आदिवासी आबादी, जैसे मुंडा, हो, संथाल, भूमिज, उरांव और अन्य के स्वदेशी धर्मों को परिभाषित करता है। मुंडा, हो, संथाल, भूमिज और उरांव जनजाति ने सरना धर्म का पालन करते हैं, जहां सरना एक पवित्र धार्मिक स्थल है। उनका धर्म पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही जो मौखिक परंपराओं पर आधारित है। इसमें प्रकृति, जंगल, पहाड़ (बुरु), ग्राम देवता, सूर्य और चंद्रमा की पूजा शामिल है।

सरना धर्म के अनुयायी

डोनी - पोलो

डोनी-पोलो पूर्वोत्तर भारत में अरुणाचल प्रदेश से तानी के स्वदेशी धर्मों, एनिमिस्टिक और शैमैनिक प्रकार के लिए दिया गया पदनाम है। "डोनी-पोलो" का अर्थ "सूर्य-चंद्रमा" है।

भारत की प्रमुख जनजातियाँ

भारत में 461 जनजातियां हैं, जिसमें से 424 जनजातियों भारत के सात क्षेत्रों में बंटी हुई हैं:

उत्तरी क्षेत्र
जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड , हिमाचल प्रदेश

जातियाँ: लेपचा, भूटिया, थारू, बुक्सा, जॉन सारी, खाम्पटी, कनोटा।

इन सब में मंगोल जाति के लक्षण मिलते हैं। जैसे:- तिरछी छोटी आंखे (चाइनीज, तिब्बती), पीला रंग, सीधे बाल, चेहरा चौड़ा, चपटा नाक।

उत्तर प्रदेश

तराई जिलों में थारु, बोक्सा, भूटिया, राजी, जौनसारी,केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश के 11 जिलों में गोंड़, धुरिया, ओझा, पठारी, राजगोड़, तथा देवरिया बलिया, वाराणसी, सोनभद्र में खरवार, व ललितपुर में सहरिया,सोनभद्र में बैगा, पनिका,पहडिया, पंखा, अगरिया, पतरी, चेरो भूइया।

बिहार

असुर, अगरिया, बैगा, बनजारा, बैठुडी, बेदिया, खरवार, भूमिज, संथाल आदि।

पूर्वोत्तर क्षेत्र
नागा

नागा, मिजो, गारो, खासी, जयंतिया, आदि, न्याशी, अंगामी, भूटिया, कुकी, रेंगमा, बोडो और देवरी वगैरा जनजाति हैं।

पूर्वी क्षेत्र

उड़ीसा:- मुण्डा, संथाल, हो, जुआंग, खोड़, भूमिज, भुईयां घटवाल,खरिया।

झारखण्ड:- मुण्डा, उराँव, भूमिज, संथाल, बिरहोर, हो, घटवाल।

संथाल:- भारत की सबसे बड़ी जनजाति। संथाली भाषा को संविधान में मान्यता प्राप्त हैं।

पश्चिम बंगाल:- मुण्डा, हो, भूमिज, उराँव, संथाल, कोड़ा।

पहचान : रंग काला, चॉकलेटी कलर, लंबा सिर, चौड़ी छोटी व चपटी नाक, हल्के घुंघराले बाल। यह सभी प्रोटो ऑस्टेलाइड प्रजाति से संबधित हैं।

मध्य क्षेत्र

गोंड,कोरकू , कोल, परधान, बैगा, मारिया, अबूझमाडिया, धनवार/धनुहार, धुलिया, पहाड़ी कोरवा, बिरहोर, हल्बा,कंवर।

ये सभी प्रजातियां छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, पूर्वी आंध्र-प्रदेश में निवास करते हैं। ये सभी प्रोटो ऑस्टेलाइड प्रजाति से संबधित हैं।

पश्चिमी भारत में
गुजरात की एक आदिवासी महिला

गुजरात,(राजस्थान में विशेष कर उदयपुर सभांग में भील,भिलाला,मीना ; गरासिया व सिरोही कि आबुरोङ व पिण्डवाङा में भील ,नायक *गरासिया बहुतायत आबूरोङ के भाखर पट्टे में सभी आदिवासी समुदाय रहते हैं पश्चिमी मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र : (ठाकुर44)भील, गोंड़,धाणका भीलाला , बारेला इत्यादी

दक्षिण भारत में

केरल:- कोटा, बगादा, टोडा। (टोडा में बहुपति प्रथा प्रचलित है।)

कुरूंबा, कादर, चेंचु, पूलियान, नायक, चेट्टी ये सभी जनजातियां नीग्रिये से संबधित हैं।

विशेषताएं:- काला/गोरा रंग, बड़े होठ,बड़े नाक long height
द्विपीय क्षेत्र

अंडमान-निकोबार- जाखा, आन्गे, सेन्टलिस, सेम्पियन (शोम्पेन)

यह जातियां नीग्रिये प्रजाति से संबधित हैं। ये लुप्त होने के कगार पर हैं।

निष्कर्ष

"आदिवासी समाज और संस्कृति के प्रति हमारे तथाकथित सुसंस्कृत समाज का रवैया क्या है? वो चाहे सैलानी – पत्रकार लेखक हों या समाजशास्त्री, आम तौर पर सबकी एक ही मिलीजुली कोशिश इस बात को खोज निकलने की रही है कि आदिवासियों में अदभुत और विलक्षण क्या है? उनके जीवन और व्यवहार में आश्चर्य और तमाशे के लायक चीजों की तलाश और हमसे बेमेल और पराए पहलुओं को इकहरे तरीके से रोशन करने लोगों का ध्यान आकर्षित करने और मनोरंजन के लिए ही लोग आदिवासी समाज और सुसंस्कृति की ओर जाते रहे हैं। नतीजा हमारे सामने है : उनके यौन जीवन और रीति- रीवाजों के बारे में गुदगुदाने वाले सनसनीखेज ब्योरे तो खूब मिलते हैं, पर उनके पारिवारिक जीवन की मानवीय व्यथा नहीं। उनके अलौकिक विश्वास, जादू – टोने और विलक्षण अनूष्ठानों का आँखों देख हाल तो मिलता है, उनकी जिंदगी के हर सिम्त हाड़तोड़ संघर्ष की बहुरूपी और प्रमाणिक तस्वीर नहीं। वे आज भी आदमी की अलग नस्ल के रूप में अजूबा की तरह पेश किए जाते हैं। विचित्र वेशभूषा में आदिम और जंगली आदमी की मानिंद।"
परिचय

जनजातियों की सांस्कृतिक परम्परा और समाज – संस्कृति पर विचार की एक दिशा यहाँ से भी विचारणीय मानी जा सकती है। मानव विज्ञानियों और समाजशास्त्र के अद्येताओं ने विभिन्न जनजातीय समुदायों का सर्वेक्षण मूलक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है और उसके आधार पर विभिन्न जनजातीयों के विषय में सूचनाओं के विशद कोष हमें सुलभ है। पुन: इस अकूत शोध- सामग्री के आधार पर विभिन्न जनजातीय समूहों और समाजों के बारे में निष्कर्षमूलक समानताओं का निर्देश भी किया जा सकता है। लेकिन ऐसे अध्ययन का संकट तब खड़ा हो जाता है जब हम ज्ञान को ज्ञान के लिए नहीं मानकर उसकी सामाजिक संगति की तलाश खोजना शुरू करते हैं। ये सारी सूचनाएं हमें एक अनचिन्हीं- अनजानी दुनिया से हमारा साक्षात्कार कराती हैं, किन्तु इस ज्ञान का संयोजन भारतीय समाज में उनके सामंजस्यपूर्ण समायोजन के लिए किस प्रकार किया जाए, यह प्रश्न अन्य दुसरे सवालों से अधिक

महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ समाज – चिंतन की हमारी दृष्टि और उसके कोण की वास्तविक परीक्षा भी शुरू हो जाती है। ठीक यहीं से सूचनाओं का विश्लेष्ण – विवेचना चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं।

किसी भी समाज का अतीत बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। तो भी शुद्ध अतीतजीवी होने की भी कोई तार्किकता नहीं हो सकती है। जनजातियों के संदर्भ में विचार करें तो यह सवाल और नुकीला हो जाता है कि क्या उन्हें आदिम मानव- सभ्यता के पूरात्तात्विक पुरावशेष के रूप में पुरातन जीवन- स्थिति में ही अलग थलग छोड़ दिया जाए या विज्ञान और तकनीकी प्रगति की आधुनिक व्यवस्था में समायोजित होने का अवसर भी दिया जाए? सवाल तो यह भी उतना है महत्त्वपूर्ण है कि क्या उनके विकास के नाम उन्हें आधुनिक जटिल राज्य तंत्र और समाज – व्यवस्था के सामने टूटकर विखरने के लिए छोड़ दिया जाए या उन्हें नए परिवेश में सहज गतिशील होने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाए?

आज जब औद्योगिक विकास के लिए खनिज सम्पदा और जंगल-पहाड़ के इलाके राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्यतः उपयोगी माने जा रहे हैं और ये सारी सहूलियतें इन्हीं आदिवासी अंचलों में सुलभ हैं तो क्या क्षेत्रीय या राष्ट्रीय हितों के लिए 10 प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित कर उनकी अपनी जीवन शैली, समाज- संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों में बलात वंचित कर किया जाए? यानी आज यह सर्वोपरी आवश्यकता दिख रही है कि विकास की मौजूदा अवधारणा की एक बार फिर समीक्षा की जाए और नई आधुनिक व्यवस्था में जनजातीय समूहों के मानवीय अधिकारों की समुचित अभिरक्षा की जाए। तभी जजतीय संस्कृति या उसकी परंपरा के विषय में हमारी चिंता को एक वास्तविक आधार सुलभ होगा।

"आदिवासियों के आख्यान उनके मिथक, उनकी परम्पराएँ आज इसलिए महत्त्व्पून नहीं हैं कि वे बीते युगों की कहानी कहती हैं, बल्कि उनकी अपनी संस्थाओं और संस्कृति के एतिहासिक तर्क और बौद्धिक प्रसंगिकता के लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ, सौन्दर्यात्मक चेष्टाएँ और अनूष्ठानिक क्रियायें हमारी – आपकी कला- संस्कृति की तरह आराम के क्षणों को भरने वाली चीजों नहीं हैं, उनकी पूरी जिन्दगी से उनका एक क्रियाशील, प्रयोजनशील और पारस्परिक रिश्ता है, इसीलिए उनकी संस्कृति एक ऐसी अन्विति के रूप में आकार ग्रहण करती है जिनमें उनके जीवन और यथार्थ की पूनार्चना होती हैं"।
संस्कृति

सांस्कृतिक परम्परा पर विचार करने से पहले यह परिभाषित कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति क्या है? संस्कृति कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति और लोकतंत्र में क्या अंतर है: जनजातीय संस्कृति और लोकसंस्कृति में भी कोई अंतर है या नहीं? विविध प्रकार की जीवन-शैलियों और सामाजिक परमपराओं में संस्कृति के जो स्थानिक और देशिक रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनके वर्गीकरण और एकीकरण के क्या आधार हो सकते हैं। संस्कृति की जो व्याख्या मानवशास्त्री देते हैं वह स्वयं संस्कृतिकर्मियों के लिए कितना अर्थपूर्ण है[20,21]

संस्कृति का सीधा- सादा अर्थ है परिष्कार या संस्कार। वस्तुतः परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. राम खेलावन पाण्डेय ने लिखा है कि" संस्कृति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और अंग्रजी कल्चर का समनार्थसूचक। इसके संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी सीमाएँ तक ओर धर्म का स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर साहित्य को अपने बाहूपाश में आबद्ध करती हैं। संस्कृति भौतिक साधनों के संचयन के साथ ही अध्यात्मिकता की गरिमा से मंडित होती है। वेश- भूषा, परंपरा, पूजा-विधान और सामाजिक रीति – विधान और सामाजिक रीति- नीति की विवेचना भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। .... प्रकृति की सीमाओं पर मनुष्य ने जो विजय चाही, उसका भौतिक स्वरूप सभ्यता, और आत्मिक, अध्यात्मिक अथवा मानसिक स्वरूप संस्कृति है। सभ्यता बाह्य- प्रकृति पर हमारी विजय का गर्वध्वज है और संस्कृति अंत: प्रकृति पर विजय-प्राप्ति की सिद्धि।"

संस्कृति की ऐसी परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने उपलब्ध कराई हैं जिनमें उसके इस व उस पक्ष या कई पक्षों का समन्वय स्थापित करें के चेष्टाएँ झलकती हैं। किन्तु ऐसी परिभाषाएँ संस्कृति का खंडित अध्ययन करती हैं जबकि पिछली दो शताब्दियों में ज्ञान के विविध क्षेत्रों में कई नई परिभाषाएँ विकसित हुई हैं, जिनमें एक यह भी है कि मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। संस्कृति की व्याख्या न तो केवल अनुवांशिक जैविकता के आधार पर की जा सकती है, न सिर्फ सामाजिकता के आधार पर। इसी तरह उसे सभ्यता के अलग-अलग खानों में बाँटकर भी नहीं समझा जा सकता।

टायलर ने संस्कृति की जो व्यापक संकल्पना प्रस्तावित की है, उसमें कई मतभेदों का समाहार देखा जा सकता है। टायलर के आनुसर संस्कृति "वह जटिल ईकाई है जिसके अंतर्गत और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है।" इस तरह टायलर ने यह प्रतिपादित किया है कि संस्कृति सामाजिक परंपरा से अर्जित चिंतन, अनुभव और व्यवहार – मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समस्त रीतियों की समष्टि है। यही संकल्पना परवर्ती मानव वैज्ञानिकों की कार्यप्रणाली का

आधार बनी है। मैलिनोव्सकी की परिभाषा भी इससे मिलती जुलती है कि "संस्कृति के अंतर्गत वंशगत शिल्प- तथ्यों, वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है।" यही बात लिंटन, क्लकहॉन, क्रोबर आदि की परिभाषाओं में भी व्यक्त होती है।
वस्तुत: संस्कृति विषयक, चिंतन का क्षेत्र विभिन्न मतवादों से भरापूरा क्षेत्र है। मतान्तरों की परीक्षा का स्वतंत्र अध्ययन इस पुस्तक की सीमाओं में अभीष्ट नहीं है। इस संबंध में डॉ. दिनेश्वर प्रसाद की पुस्तक लोक साहित्य में इस विषय के विस्तार में जाकर विवेचन सुलभ और द्रष्टब्या है।

निष्पत्ति के रूप में यह कहा जा सकता है कि " विभिन्न संस्कृतियों की तुलनात्मक सांख्यिकी यह बतलाती है कि मानव जातियों एक ही वास्तविकता का मूल्यांकन अलग – अलग रूपों में करती हैं। सुन्दर और कुरूप , शिव और अशिव, सार्थक और निरर्थक आदि धारणाओं और मूल्यों के संबंध में उनमें पर्याप्त मतभेद हैं। ..... भारतीय दस दिशाओं की कल्पना करते छह की। यूरोप में लाल रंग शोक का प्रतिक है' किन्तु प्लेन्स इंडियनों में विजय और उल्लास का। चीन में श्वेत रंग शोक का प्रतीक है जबकि चेरोकी जाति में दक्षिण दिशा का। भिन्नता की यह स्थिति कला संबंधी धारणाओं से लेकर में राग और लय दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन बहूत सीअफ्रीकी संस्कृति एकापत्नित्व को आदर्श मानती है और इस्लामी संस्कृति बहूपत्नित्व को, जबकि भारत की कुछ जातियों में बहूपत्नित्व आदर्श भी है व्यवहार भी। इस तरह प्रतिमानों की सार्थकता स्थानीय या क्षेत्रीय होती है और उसके संबंध में हर संस्कृति के अपने तर्क होते हैं जिन्हें वह अकाट्य मानती है।"

संस्कृति के अध्येताओं के लिए सांस्कृतिक सापेक्षतावाद के अनेक अभिप्राय हो जाते हैं। इसी तर्क के आधार पर यह माना जाता है कि न तो किसी संस्कृति को श्रेष्ठ कहा जा सकता है और न हीन, न तो महत्त्वपूर्ण और न महत्त्वरहित। जब हम कुछ जातियों को आदिम कहते हैं तो संभवत: हमारा अभिप्राय यही होता है कि वे हमारे समकालीन जीवन की पूर्ववर्ती स्थिती के उदारहण हैं। लेकिन यह धारणा भी तथ्याधारित नहीं ठहरती। वस्तुत: विश्व के मानचित्र पर अलग-अलग भौगोलिक परिवेश में इतनी किस्म की संस्कृतियाँ विद्यमान हैं, रही हैं की कहना पड़ता है कि हर समाज की संस्कृति उसका सांचा है और सामान्य संस्कृति के लक्षणों के निर्धारण में किसी भी एक संस्कृति का सांचा सम्पूर्ण नहीं हो पाता।
झारखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र

झारखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र का एक भाग भी कहा जाता रहा है, सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध अतीत और वर्त्तमान का क्षेत्र है। अगर आपकी दृष्टि सिर्फ एक पर्यटक की दृष्टि नहीं है और उस पर औद्योगिक विकास के आंकड़े पढ़ने वाला चश्मा हो, तब आप झारखंडी संस्कृति की विशिष्ट पहचान से साक्षात्कार कर सकते हैं। यह क्षेत्र और यहाँ की मूलवासी जातियाँ जिनमें जनजातियाँ और सदानी समुदायों की साझेदारी है, सदियों से एक समरस और समतावादी समाज बनाकर रहते आए हैं।
यह इतिहास लगभग दो हजार साल पुराना इतिहास है जब सदानी जातियों की मूल जाती नागवंशियों ने छोटानागपुर में राज्य बनाया था। खुखर राज्य के पहले राजा नागवंशी फणीमुकूट राय थे जिन्होंने मुंडाओं के सहयोग से राज्य की स्थापना की थी। नाग जाति के बारे में अभी तक पर्याप्त शोध नहीं हुए हैं किन्तु डॉ. अम्बेडकर, डॉ. कुमार सुरेश सिंह, डॉ. बी.पी. केशरी तथा कई अन्य विद्वानों ने जो प्रमाण और साक्ष्य जुटाए हैं वे नाग जाति के इतिहास के अस्तित्व को स्पष्ट स्थापित करते हैं। नाग जाति बहुत सुसंस्कृत, बहादुर और शांतिप्रिय जाति रही हैं इस जाति ने गौतम बुद्ध के नेतृत्व में सैकड़ों वर्षों तक ब्राह्मण धर्म के जातिभेद और छुआ – छूत के खिलाफ संघर्ष किया था। हिन्दूओं ने अपने बहुत से पर्व – त्योहार इस जाती के संस्कृति से लिए हैं प्रसिद्ध राजा शशांक इसी नाग जाति के थे।
सदानी जातियों के समानांतर इस क्षेत्र जनजातीय समाज और उसकी संस्कृति भी बहुत पुरानी है। मुंडा जनजाति के भूमिज लोगों ने सिंहभूम- वराहभूम के इलाके में भूमिज राज कायम किया था।" छोटानागपुर में पाए जाने वाले अनेक असुर स्थलों पर प्राप्त पुरातात्त्विक वस्तुओं के आधार पर यह कहा जाता है की सांस्कृतिक दृष्टि से छोटानागपुर उतना ही प्राचीन है, जितनी सिन्धु घाटी की सभ्यता। फिर भी साधारणत: बिहार का और विशेषकर छोटानागपुर का प्रारंम्भिक सांस्कृतिक इतिहास रहस्य के आवरण में ढंका हुआ। इसलिए इस क्षेत्र का इतिहास मुख्यत: वैदिक पौराणिक, जैन तथा बौद्ध साहित्य के छिटपुट अवलोकन, पुरातात्त्विक वस्तुओं के अध्ययन एवं क्षेत्रीय लोकसाहित्य और दंतकथाओं के विश्लेष्ण के आधार पर ही तैयार किया जा सकता है।.... ऐसा अनुमान किया जाता है कि मुंडा लोग इस क्षेत्र में ईसाई युग शुरू होने से पहले ही आकर बसने लगे होंगे। असुर संस्कृति के बारे मे यह कहा जा सकता है कि यह संस्कृति कम-से- कम कुषाण काल तक (लगभग 70 से 150 ई. सन) तो थी ही जैसा कि दो असुर स्थलों पर पाए जाने वाले कुषाण सिक्कों से पता चलता है। ऐसा मन जाता है कि असुर लोग भगवान शिव के बड़े भक्त थे तथा शिव लिंग की पूजा करते थे।"
"मानव वैज्ञानिक का एक समुदाय भारत को जनजातीय और गैरजनजातीय सांस्कृतियों के विलगाव और असम्बद्धता पर इतना अधिक बल देता रहा है कि आज हम उनको एकदम भिन्न मानने लगे हैं। लेकिन ऐतिहासिक संदर्भ में विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उतनी भिन्न और असम्बद्ध नहीं हैं जितनी समझी और समझायी जाती हैं। बहुत सी जनजातियाँ हिन्दू समाज की जातियों में बदल गई हैं और बहुत सारी सांस्कृतिक विशेषताएँ उसकी सामान्य संस्कृति के अभिलक्षण बन गई हैं। जहाँ उनका स्थानांतरण

जातियों में नहीं हुआ है, वहाँ भी गैरजनजातियों समुदायों से उनका सम्पर्क बना रहा है। यह जरूरी नहीं कि जो जनजातियाँ आज गैरजनजातियों साथ या समीप न रहकर उनसे दूर और अलग रही हैं, वे अतीत में उनके साथ या निकट नहीं रहती थीं।

उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार वे बहुत – से भारतीय प्रदेशों में शताब्दियों से लगभग एक परिमती भौगोलिक क्षेत्र में निवास करती रही हैं तो भारत के एक सीमांत से दुसरे सीमांत तक उनका आव्रजन ही हुआ है। प्रत्येक स्थिति में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बाध्यताओं के कारण, वे गैरजनजातीय समुदायों के सम्पर्क में आती रही हैं। यही नहीं उनका एक उल्लेख भाग गैरजनजातीय लोगों के साथ गांवों में निवास करता रहा है। इतिहास के विभिन्न कालों में आपसी संपर्कों से लेकर सन्निकटता और रक्त मिश्रण जैसी स्थितियों के कारण उन्होंने भारतीय संस्कृति के नाम से जानी जाने वाल संस्कृति का निर्माण और विकास ग=किया है।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि झारखण्ड की जनजातीय संस्कृति और गैर जनजातीय सदानी संस्कृति के बीच परस्पर आदान-प्रदान का सिलसिला पुराना है। इसकी जाँच के आधार के रूप में भाषा का उपयोग जिन विद्वानों ने किया है, उनमें डॉ. कायपर, प्रोपिजूलिस्की, डॉ. प्रबोधचंद्र बागची, प्रो.सिलवां लेवी और डॉ. दिनेश्वर प्रसाद के अध्ययन से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि संस्कृतिक संबंद्धता का इतिहास उतना ही पुराना है जितना इस दुर्गम क्षेत्र में मानव-विकास।

इस संस्कृतिक सम्बद्धता की सदियों पुरानी परंपरा को डॉ. वीर भगत तलवार जैसे विद्वान झारखंडी बनाम ब्राह्मणवादी संस्कृति की संघर्ष यात्रा के रूप में विवेचित करते हैं। उन्होंने यह बताने की कोशिश की है। झारखण्ड की समतावादी संस्कृति और भेदवादी ब्रह्मण वादी संस्कृति एक दुसरे की विरोधी हैं। कालान्तर में जो संस्कृतिक प्रदूषण इस क्षेत्र की अनार्य संस्कृति में फैला है, वह ब्राह्मणवादी संस्कृति के हस्तक्षेप के कारण ही। उनका माना है की झारखंडी जातियों के ब्राह्मणीकरण की शूरूआत असल में झारखण्ड में सामन्ती राज्य सत्ताओं के उदय के बाद से हुई। अपने कथन के लिए साक्ष्य जुटाते हुए डॉ. तलवार, डॉ. कुमार सुरेश सिंह के चेरो लोगों पर किए गए शोध अध्ययन का हवाला देते हैं जिसमें जिसमें दिखलाया गया है कि झारखण्ड में विभिन्न सामन्ती राज्य कायम हुए तो उनके राजपरिवार ही, जो बाकी जनता पर अपनी श्रेष्ठता को साबित करना चाहते थे, ब्राह्मणवादी संस्कृति को लाने के माध्यम बने। एक ही कबीले के शेष लोगों से खुद को ऊंचा घोषित करने के लिए अपना संबंध ब्राह्मणवाद से जोड़ा। इस काम के लिए ब्राह्मणवाद ही सबसे उपयोगी व्यवस्था थी क्योंकी यह सिर्फ ब्राह्मणवाद ही है जो समान लोगों के बीच ऊँच–नीच की धारणा को पैदा करता है और उस भेद को कायम करने के लिए धर्म का पवित्र आधार पेश करता है। डॉ. कुमार सुरेश सिंह इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहते है।

डॉ. तलवार पूछते हैं- "और इस संस्कृतिककरण का नतीजा क्या निकला? सदान कबीला दो भागों में बंट गया। राजपरिवार से जुड़े सदान ब्रह्माणवादी संस्कृति के एंजेंट बने और अपने को बाकी सदानों से श्रेष्ठ समझने लगे तथा राजपरिवार द्वारा शासित होने वाले अशिक्षित, निर्धन और गरीब सदान जो आदिवासियों से भी अधिक खराब अवस्था में रहते हैं। सदान जब झारखण्ड में आए थे तब एक कबीला थे, उनमें जाति - प्रथा नहीं थी। ब्राह्मणवाद ने उनके अंदर जाति-प्रथा पैदा की और कुछ को ब्राह्मण, कुछ को क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य और बाकी को शूद्र घोषित कर दिया। वराहभूम में सामन्ती राज खड़ा करने वाले भूमिज दो भागों में बंट गए – राजपरिवार से जुड़े सरदार भूमिज और बाकी मामूली भूमिज।"

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि छोटानागपुर की संस्कृति, जिसे झारखंडी संस्कृति की पहचान और नाम भी दिया जाता है, एक पुरानी संस्कृति है। उसे इस भौगिलिक क्षेत्र में आर्य मूल के नागवंशी सदान जातियों और मुंडकुल के जनजातीय समुदायों ने मिल-जुलकर श्रम प्रधान समतावादी जातिचेतना से रहित संस्कृति के रूप में विकसित किया था। यों तो इस क्षेत्र की विशिष्ट संस्कृति शेष भारतीय संस्कृति के जीवन सम्पर्कों में आती रही और दोनों पक्षों ने एक-दुसरे के संस्कारों को आदान - प्रदान के स्तर पर प्रभावित भी किया, किन्तु मध्य काल में मुस्लिम शासन की अवधि में सामन्ती राजसत्ताओं के स्थापित होने के बाद इस क्षेत्र के संस्कृति जीवन में बाहरी आबादी का आवागमन बढ़ने के साथ संस्कृतिकरण का एक नया दौर शुरू हुआ।[19,20,21]

संस्कृतिक परंपरा

छोटानागपुर या झारखण्ड के सांस्कृतिक परिवर्तनों के पिछले पांच सौ वर्षों का इतिहास व्यापक उलट-फेर का काल रहा है और उसने झारखंडी संस्कृति की बुनियादी पहचान को कई स्तरों पर तोड़ा और मोड़ा हैं। इसी दौर में पुराने समाज-संगठन ढीले पड़े और मुस्लिम और ईसाई जोवन – दृष्टियों से उसका परिचय हुआ। इसलिए यह कहना इतिहास सम्मत होगा कि अपने प्रारंभिक उद्भावकाल में इस क्षेत्रीय संस्कृति में हिन्दू समाज- संस्कृति की कई विकृतियाँ और संस्कार जुड़े, किन्तु इससे ज्यादा बड़े पैमाने पर संस्कृति- संकरता के आक्रमण मुस्लिम और अंग्रेज शासन – काल में दिखाई पड़ते हैं।
यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व का है कि आज के क्षेत्र की दो प्रमुख जनजातियों का प्रवेश इस क्षेत्र में इसी अवधि में हुआ है। ये जनजातीय समुदाय संताल और उराँव कबीलों के हैं जो मुंडाओं और सदानों के बाद उत्तर मध्यकाल और पूर्व आधुनिककाल

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551 | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 10, Issue 5, September 2023 |

के बीच सबसे बड़े जनसांख्यिक समीकरण बनाने से सफल हुए। उरांवो और संतालों के आगमन से पूर्व झारखण्ड के ये क्षेत्र असुरों और पहाड़िया जनजातियों के प्रभुत्व में थे।
भारत के इतिहास में सन 647 से 1200 ई. तक के काल को राजपूत काल भी कहा जाता है। छोटानागपुर राज पहली सदी में स्थापित हुआ माना गया है। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद फणी मुकूट राय छोटानागपुर के प्रथम राजा हुए। सन 83 में 19 वर्ष की अवस्था में इन्हें शासन में बिठाया गया था। पश्चिम भार्म में तब कनिष्क का शासन (सन 78-102) था।
उरांवों के संबंध में यह कहा जाता है कि वे शेरशाह के रोहतास पर आक्रमण के बाद वहाँ से भागकर छोटानागपुर में आए। उनके रोहतास छोड़ने की तिथि 6 अप्रैल, 1538 बताई जाती है। इसे अगर आधार माना जाए तो उरांवों को छोटानागपुर में बसे लगभग साढ़े चार सौ वर्ष ही हुए हैं। इसी तरह छोटानागपुर में संतालों का आगमन अंग्रेजों के शासनकाल में ही संभव हुआ। आज जिसे संताल परगना क्षेत्र के नाम से जाना जाता है, उस क्षेत्र में संतालों का आगमन अभी सिर्फ दो सौ वर्षों पहले की बात है। इस क्षेत्र के निवासी पहाड़िया जनजाति के लोग हैं। ब्रिटिश साम्राज्य का शोषण एवं दमन जब बढ़ने लगा तब पहाड़िया लोगों ने विद्रोह किया। उस विद्रोह के दमन के लिए अंग्रेजों ने सन 1770 से 1790 के बीच संतालों का यहाँ लाकर बसाया था। इस प्रकार आज के झारखण्ड के क्षेत्र के दो बड़े जनजातीय समुदायों का इतिहास इस क्षेत्र के लिए अधिक पुराना नहीं है।

छोटानागपुर की जनजातीय संस्कृति में परिवर्तन की यह अवधि पुरानी पहचान के कारणों के नष्ट होने की दृष्टि से विशेष रूप से विचारणीय हो जाती है। रोहतास से राँची पहूंचकर भी उराँव संस्कृति भी नए दबावों में आकर कायाकल्प करने को विवश हुई। ब्रिटिश कानूनों के तहत जनजातियों की सम्पत्तिविषयक आवधारणा का सम्पूर्ण क्षरण हुआ। उनकी समूदयिकता की भावना में पतनोन्मूख प्रवृत्तियाँ विकसित हुई और उनके खूंटकट्टी गांवों की भूमि- व्यवस्था भंग हो गई तथा उसकी जगह निजी स्वामित्व की सम्पत्तिविषयक आवधारणा का विकास हुआ। धर्मांतरण ने भी स्वयं इन समुदायों के धीरे – धीरे फैलते – बढ़ते-संगठित होते एक प्रभावशाली वर्ग को अपनी संस्कृति की मूल जड़ों से काटकर आधुनिकीकरण और अलगाव के खाते में दर्ज कर दिया। इस नई स्थिति के कारण जनजातियों के समाज- संगठन कमजोर हुए, सामाजिकता की भावना में ह्रास आया, अखरा- घुककुडिया की परंपरा अवरूद्ध हुई।[22]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. UN Permanent Forum on Indigenous Issues (UN PFII)
2. Working Group on Indigenous Populations/Communities in Africa, African Commission on Human and Peoples' Rights (ACHPR)
3. UNEP Indigenous People's Website
4. IFAD and indigenous peoples (International Fund for Agricultural Development, IFAD)
5. Working Group on Indigenous Populations (WGIP)
6. friends of Peoples close to Nature (fPcN)
7. Survival International - Global movement for tribal peoples
8. International Work Group for Indigenous Affairs (IWGIA)
9. IPS Inter Press Service News on indigenous peoples from around the world
10. Indigenous Peoples Center for Documentation, Research and Information (doCip)
11. Australia Regrets For Its Aboriginal Natives
12. Pyara Kerketta Foundation a community effort of tribal pepole of Jharkhand, Indaia आदिवासी WWW Virtual Library- Indigenous studies resources
13. Center for World Indigenous Studies (CWIS)
14. Indigenous Peoples of the Central African rainforest
15. Indigenous Peoples Issues & Resources
16. Janssen, D. F., Growing Up Sexually. Volume I. World Reference Atlas [full text]
17. Bemaadizing: An Interdisciplinary Journal of Indigenous Life (an online journal limited to Native Americans in North America).
18. जोहार सहिया (आदिवासियों की लोकप्रिय मासिक पत्रिका नागपुरी-सादरी भाषा में)
19. जोहार दिसुम खबर (12 आदिवासी भाषाओं में प्रकाशित भारत का एकमात्र पाक्षिक अखबार)
20. Jharkhandi Bhasha Sahitya Sanskriti Akhra (11 आदिवासी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका)
21. गोंडवाना समय
22. The Portal for indigenous filmmakers

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |

www.ijarasem.com